जो उपदेशक, मुख्य और उपचार का कथन भलीभाँति न जानता हो, मुख्य और व्यवहार का ज्ञान न हो, वह शिष्य के अज्ञान को मिटा नहीं सकता; इसलिए उसे मुख्य-निश्चय और उपचार का ज्ञान भलीभाँति होना चाहिए। निश्चय के ज्ञान की, निश्चयाश्रित की बात पहले आ गयी। अब पराश्रित व्यवहार का ज्ञान चाहिए। अकेले निश्चय का हो और व्यवहार का न हो तो भी भ्रष्ट हो; यथार्थरूप से निश्चय न हो, ऐसा।

तथा 'पराश्रितो व्यवहार:'... निश्चय की बात तो पहले पेराग्राफ में हो गयी। **जो परद्रव्य के आश्रित हो, उसे व्यवहार कहते हैं।** आत्मा के अतिरिक्त परद्रव्य के आश्रित जो कुछ भाव कहलावे, होवे, उसे व्यवहार कहने में आता है। **किंचित् मात्र कारण पाकर अन्य द्रव्य का भाव अन्य द्रव्य में स्थापन करे, उसे पराश्रित कहते**

www.vitragvani.com

हैं। कुछ भी निमित्त देखकर या संयोग देखकर उसमें भाव हुआ हो तो उसे अपना भाव कहना, **अन्य द्रव्य का भाव अन्य द्रव्य में स्थापन करे, उसे पराश्रित कहते हैं। उसी के कथन को उपचार–कथन कहते हैं।** वस्तुतः तो कर्म के निमित्त से होता विकार आदि आत्मा का वास्तव में मानना, वह मिथ्यात्व है। कर्म के निमित्त से होते उपाधिभाव, शरीर, राग आदि को भी आत्मा का मानना, वह भी मिथ्यादृष्टि है परन्तु यह व्यवहारनय ऐसा कहता है कि हमारा है – जीव का है, इतना ज्ञान इसे कराते हैं। समझ में आया? किंचित् छल (कारण) पाकर – ऐसा कहा न? किंचित् कारण पाकर। व्यवहार कहता है कि आत्मा के हैं, राग, आत्मा का है। आत्मा करता है – ऐसा व्यवहारनय कहता है। वास्तव में इसका है ही नहीं। करता है व्यवहार, निश्चय करता नहीं। कहो, समझ में आया? आती है न वह १४ वीं गाथा? वह पाँचवीं के साथ मिलायेंगे। चौदहवीं गाथा में आता है न? **'सर्वोऽपि संसारः'** कहा न? पाँचवीं गाथा। यह चौदहवीं गाथा में कहते हैं, देखो! मूल पाठ, यहाँ से उठाकर बात ली है। दृष्टान्त लिया है, उसका हेतु है न! हेतु! वहाँ यह लिया, देखो! १४, १४ गाथा

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

है? चौदहवीं गाथा, पृष्ठ १९, परन्तु व्यवहारनय कहे सही, परन्तु मान लेता है, उसे भान नहीं है। व्यवहार से है — ऐसा जानना। १४ वीं – **'एवमयं कर्मकृतैर्भावैर–समाहितोऽपि'** कर्मकृतभाव से रहित है; संयुक्त न होने पर भी, ऐसा। है? वास्तव में आत्मद्रव्य, कर्म के संयोग से हुए भाव से सहित है ही नहीं; व्यवहारनय कहता है कि है। इतना इसे पराश्रित भाव को जानना चाहिए। समझ में आया? है न इसमें? दोनों लिये हैं, हों! भाव अर्थात् रागादि; और शरीरादि। **अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है और वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार का बीजरूप है।** संसार, वही वास्तव में संसार है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा के साथ मिलायेंगे। पाँचवीं में भूतार्थ–अभूतार्थ है सही न?

व्यवहारनय अभूतार्थ को कहता है। समझ में आया? जो इसका भाव नहीं है, उसे

www.vitragvani.com

इसका कहता है। शरीरादि इसके नहीं है; रागादि (इसके नहीं हैं), परन्तु इतना इसे सम्बन्ध है, इतना इसे जानना चाहिए। यह कहेंगे, देखो! **किंचित् मात्र कारण पाकर अन्य द्रव्य का भाव अन्य द्रव्य में स्थापन करे, उसे पराश्रित कहते हैं। उसी के कथन को उपचार-कथन कहते हैं।** देखो! अभूतार्थ कथन कहो, व्यवहार कथन कहो या उपचार कथन कहो। **इसे जानकर...** देखो! अब आया। **शरीरादि के साथ सम्बन्धरूप संसार दशा है,..** यह व्यवहार हुआ। यह व्यवहार है न? शरीरादि के साथ और रागादि के साथ सम्बन्धरूप संसारदशा है। निश्चय में ये इसके नहीं हैं। समझ में आया?

शरीर का यह निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है या नहीं? और रागादि का सम्बन्ध है या नहीं? ऐसा न जाने तो इसे छोड़ने का प्रयत्न करे ही नहीं। इसे, शुभयोग से भी भ्रष्ट हो - ऐसा कहेंगे। देखो! **इसे जानकर (जीव को) शरीरादि के साथ सम्बन्धरूप संसारदशा है...** ऐसा लेना। यहाँ जीव की बात है न? इसे जानकर अर्थात् उपचार कथन को जानकर, पर के पर में भाव कहनेवाले व्यवहारनय के कथन को जानकर, शरीरादि के साथ अर्थात् शरीर और रागादि के साथ सम्बन्धरूप संसाररूप दशा है। समझ में आया?

जीव को और शरीर को ऐसे निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है और रागादि परिणाम जीव में है, संसारदशा है, वह व्यवहार है, वह उपचार है। समझ में आया? इसे जानकर अर्थात् किसे? कि अन्य द्रव्य का भाव अन्य द्रव्य में स्थापन करे, वह पराश्रित; उसका कथन उपचार कथन है। इसे जानकर। जानना चाहिए ठीक से कि कर्म के और आत्मा के निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है; शरीर को और इसे सम्बन्ध है; आत्मा में रागादि भाव हैं। यहाँ व्यवहारनय की बात है, हों! निश्चयनय कहता है कि ऐसे भी ऐसा मान ले तो भव का बीज है, भव का बीज है। समझ में आया?

व्यवहार से इसे ज्ञान में भलीभाँति जानना चाहिए। राग और संसार नहीं होवे, संसार नहीं... नहीं... नहीं... दुःख तो नहीं तो फिर मिटाना क्या? संसारदशा व्यवहारनय वाली कहते हैं कि संसार है, राग-द्वेष है, शरीरसम्बन्ध है, कर्म का सम्बन्ध है। समझ में आया? इन दो नय के परस्पर न्याय समझे बिना यह सब विरोध उठा है न! इसलिए कहते हैं, मुख्य-उपचार का ज्ञान तो भलीभाँति उपदेशक आचार्य को.. आचार्य की प्रधानता है, हों!

www.vitragvani.com

उसे होना चाहिए। इसके बिना तो निश्चय में व्यवहार डाल दे और व्यवहार में निश्चय डाल दे और गड़बड़ी हो तथा वास्तविक तत्त्व इसे प्रतीति में आवे नहीं। लो!

इसे जानकर, अर्थात् किसे? व्यवहार को, उपचार को। क्या जाने? कि शरीरादि के साथ सम्बन्धरूप विकार है, शरीर सम्बन्ध है – ऐसा जाने, बस! उसे न जाने, तब तो हो रहा। यह सम्बन्ध नहीं तो फिर सम्बन्ध निश्चय से नहीं – यह कहाँ से आया? सम्बन्ध, व्यवहार से है; निश्चय से नहीं। समझ में आया? उसे जानकर **सम्बन्धरूप संसार दशा है, उसका ज्ञान करके, संसार के कारण जो आस्रव–बन्ध हैं,...** लो! देखा? क्या कहा पहले? कि उपचार को जानकर **शरीरादि के साथ सम्बन्धरूप संसार दशा है, उसका ज्ञान करके,...** संसार है, राग–द्वेष है, पुण्य–पाप है, अशुद्धता है। उसे **उसका ज्ञान करके, संसार के कारण...** वह संसार का कारण है। देखो! यह संसार है, उसके कारण जो आस्रव और बन्ध, **उन्हें पहिचान कर,...** आस्रव–बन्ध को पहिचानना चाहिए न! विकारी परिणाम, वह आस्रवभाव... समझ में आया?

संसार के कारण जो आस्रव–बन्ध हैं, उन्हें पहिचान कर,... लो! यह सब व्यवहार हुआ। समझ में आया? राग–द्वेष है, शरीर–सम्बन्ध है, यह संसारदशा है, इसे जानकर, तथा इसके कारणरूप आस्रव और बन्ध को पहिचानकर। भलीभाँति जानना चाहिए कि पुण्य–पाप के भाव, वह आस्रव है; अटका है, वह बन्ध है। पर के (कर्म के) रजकण आवें, वह द्रव्य–आस्रव है; रजकण बँधे, वह द्रव्य–बन्ध है। इनका वर्णन करेंगे, तब दो–दो करेंगे, आस्रव–बन्ध का वर्णन है न? इसमें कहीं है न यह? नव तत्त्व में। समझ में आया? तत्त्वार्थश्रद्धान कहा है या नहीं? तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन की व्याख्या है न? कौन–सी गाथा? यह सम्यग्दर्शन की होगी, ठीक! २२ गाथा, ठीक! यह तो सम्यग्दर्शन का शुरु करते हैं यह।

'**जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्**' समझे न? वहाँ आगे आस्रव–बन्ध की व्याख्या जरा–सी दूसरे प्रकार से की है। '**आस्रवतत्त्व – जीव के रागादि परिणामों से योग द्वारा आनेवाले पुद्गल के आगमन को आस्रवतत्त्व कहते हैं।**' इस प्रकार लिया है। है न? उस ओर २८ वाँ पृष्ठ है। है न आस्रव? यहाँ अपने आस्रव–

www.vitragvani.com

बन्ध चलता है न यह ? **'आस्रवतत्त्व – जीव के रागादि परिणामों से...'** ये भाव **'योग द्वारा आनेवाले पुद्गल के आगमन को आस्रवतत्त्व कहते हैं।'** यहाँ आस्रवतत्त्व ऐसे सिद्ध किया है। जहाँ तत्त्वार्थश्रद्धा की व्याख्या स्पष्ट की है, (वहाँ ऐसा लिया है।)

'बन्धतत्त्व – जीव की अशुद्धता के निमित्त से आये हुए पुद्गलों का ज्ञानावरणादिरूप अपनी स्थिति और रससंयुक्त आत्मप्रदेशों के साथ सम्बन्धरूप होने को बन्धतत्त्व कहते हैं।' ऐसा लिया है। संवर में ऐसा लिया है, निर्जरा में ऐसा लिया है। व्यवहार से भेदरूप है न इसलिए। समझ में आया ? मेरी दशा में संसार है, विकार है, शरीर का सम्बन्ध है – ऐसे व्यवहार / उपचार को भलीभाँति जानना चाहिए। उपचार है, उसे नहीं जानना कि नहीं, नहीं; वह कुछ नहीं – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? जानने के लिये बात है, हों! वस्तु के साथ सम्बन्ध धरावे, तब तो मिथ्यात्व हो जाए। यह एक जाननेयोग्य वस्तु है।

मुक्त होने के उपाय... अब, वे संसार के कारण जाने, संसार और बन्ध, आस्रव और बन्ध। अब **मुक्त होने के उपाय जो संवर-निर्जरा हैं उनमें प्रवर्तन करे।** देखो! आस्रव-बन्ध को जानकर; मुक्ति होने का उपाय, मोक्ष होने का जो उपाय संवर -निर्जरा, उसमें प्रवर्ते, पर्याय में प्रवर्ते — संवर-निर्जरा पर्याय में प्रवर्ते – ऐसा कहा न ? समझ में आया ?

अज्ञानी इन्हें जाने बिना... यह संसारदशा, राग-द्वेष सम्बन्ध, शरीर का सम्बन्ध, यह संसार; इसके कारण आास्रव-बनध, इन्हें टालने का उपाय संवर और निर्जरा, मोक्ष का उपाय। **अज्ञानी इन्हें जाने बिना शुद्धोपयोगी होने की इच्छा करता है,...** अभी संसारदशा है, उसका ज्ञान किया नहीं और शुद्धोपयोग हो ? किस प्रकार हो ? समझ में आया ? **शुद्धोपयोगी होने की इच्छा करता है, वह पहले ही व्यवहार-साधन को छोड़कर...** क्योंकि विकार आदि है, उसे तो छोड़ना नहीं; विकार है छोड़ने का, उसे ज्ञान (में) निर्णय करना चाहिए। यह व्यवहार साधन कहा यहाँ ? देखो! व्यवहार साधन को छोड़कर... है न ? क्या साधन कहा ? क्या शब्द है ? यह शुभराग-उपयोग जो है न, पहले राग तीव्र है, उसे मन्द करने का वहाँ होता है या नहीं व्यवहार साधन में ? व्यवहार साधन

www.vitragvani.com

में, व्यवहार-उपचार कथन में, उपचार का ज्ञान करने में - ऐसी यहाँ बात है। सन्तोष की कहाँ बात है? यह तो यदि इसे रागवाला, संसारवाला, बन्धवाला, निमित्त के सम्बन्ध शरीरवाला न जाने तो इसे शुभभाव हो कहाँ से? शुभभाव नहीं होगा, क्योंकि इसे, ऐसे जाने तो इसे छोड़ूँ - ऐसा विकल्प हो, और शुभभाव न हो तो फिर भ्रष्ट हो - ऐसा कहते हैं।

अज्ञानी इन्हें जाने बिना शुद्धोपयोगी होने की इच्छा करता है, वह पहले ही व्यवहार-साधन को छोड़कर... विकल्प है, शुभभाव है, यह जाना, वह सब शुभभाव है। वह आस्रव है, वह बन्ध है, वह संसार है — ऐसा जाना न? ऐसा अन्दर विकल्प-शुभभाव है। उसे जाने बिना सीधे **शुद्धोपयोगी होने की इच्छा करता है, वह पहले ही व्यवहार-साधन को छोड़कर...** शुभोपयोग को छोड़कर **पापाचरण में लीन होकर,...** ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

नरकादि के दुःख-संकटों में (जा गिरता है। इसलिए उपचार-) कथन का भी ज्ञान होना चाहिए। जानपना चाहिए - ऐसा कहते हैं यहाँ। आत्मा को और कर्म को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, शरीर को और आत्मा को निमित्त सम्बन्ध है; आस्रव-बन्ध, संसार के कारण हैं, उन्हें टालने का-मुक्ति का उपाय यह संवर-निर्जरा की प्रवृत्ति है - ऐसे इसे निश्चित जानना चाहिए। ये सब उपचार हैं, परन्तु जानना चाहिए - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? समयसार की शैली की इसमें अधिक स्पष्टता है। सादी-साधारण बात ली है। समझ में आया? वह तो अकेला मक्खन भरा है।

इसलिए **वह व्यवहारनय के आधीन है,...** यह जानना व्यवहारनय के आधीन है। राग-द्वेष, विकार, कर्म-सम्बन्ध का जानना व्यवहारनय के आधीन है। **वह व्यवहारनय के आधीन है, अतः उपदेशदाता को व्यवहार का भी ज्ञान होना आवश्यक है।** इसे भलीभाँति (जानना) चाहिए। फिर गड़गड़ वहाँ डाले तो शुभयोग से भ्रष्ट होगा और निश्चय में आ सकेगा नहीं। **इस भाँति दोनों नयों के ज्ञाता आचार्य धर्मतीर्थ के प्रवर्तक होते हैं, अन्य नहीं।** लो! समझ में आया? निश्चय से कर्मकृत विकार आदि संयुक्त नहीं, परन्तु व्यवहार से संयुक्त है; इसे न जाने तो, 'नहीं' — ऐसा निश्चय कहाँ से

www.vitragvani.com

करेगा ? समझ में आया ? व्यवहार से कर्म और कर्म के निमित्त से होनेवाला विकार, इससे संयुक्त जीव पर्यायदृष्टि से है; स्वभावदृष्टि से देखने पर, उसे अपना माने तो मिथ्यात्व है, संसार का बीज है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : व्यवहारनय का स्थान ही नहीं।

उत्तर : स्थान नहीं। ले, व्यवहारनय को विषय नहीं ? वस्तु नहीं तो विषय नहीं तो नय भी नहीं। नय है, (तो) उसका विषय है या नहीं कुछ ? आहा... ! ज्ञान करने के लिये वस्तु नहीं कि यह बन्ध है, राग है, द्वेष है, सम्बन्ध है ? — इसका ज्ञान नहीं करे तो इन्हें छोड़ने का शुभ-विकल्प भी नहीं करे। समझे न ? छोड़ने के लिये छोड़ूँ — ऐसा भाव भी नहीं करे। उपदेशदाता को व्यवहार का भलीभाँति जानना, जैसा है, वैसा उसे होना चाहिए। इससे व्यवहार से निश्चय होता है - ऐसी यहाँ बात सिद्ध नहीं करनी। समझ में आया ? व्यवहार से निश्चय हो और व्यवहार करते-करते (निश्चय हो) - ऐसा यहाँ सिद्ध नहीं करना। यहाँ तो पर्याय में राग-द्वेष, पुण्य-पाप है, संसारदशा है, जीव को और शरीर को निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है, जीव को और कर्म को निमित्त सम्बन्ध है—इतना इसे जानना चाहिए। यदि इसे ऐसा ज्ञान न होवे तब तो सत् का उपदेश किस प्रकार देगा ? व्यवहार, वह भी व्यवहार से तो सत् है या नहीं ? समझ में आया ? साधन किसने कहा ? शुभ उपयोग को छोड़ेगा, उसके ज्ञान में व्यवहार नहीं होवे तो - ऐसा कहते हैं। ज्ञान में, रागादि से सम्बन्ध है, शरीर से सम्बन्ध है — ऐसा नहीं होवे तो शुभ उपयोग नहीं रहे; क्योंकि उसे छोड़ता यह है, है ऐसा विचार ही नहीं, तब तो फिर इसे शुभभाव भी नहीं। है — ऐसा विचार करना, वह शुभभाव है। समझ में आया ? उसे छोड़ देगा तो भ्रष्ट होगा, अकेले पाप के विचार रहेंगे - ऐसा कहते हैं। वजुभाई !

इस भाँति दोनों नयों के ज्ञाता... यहाँ जानने का वजन देना है न ? **आचार्य धर्मतीर्थ के प्रवर्तक होते हैं, अन्य नहीं।** ठीक से पर्यायभेद, गुणभेद, रागादि निमित्त सम्बन्ध है, ऐसा ठीक से जानना चाहिए। ऐसा न जाने तो शिष्य को, व्यवहार सम्बन्ध है — ऐसा तो कहेगा नहीं; सम्बन्ध नहीं तो कहेगा; तो सम्बन्ध है, उसे तोड़ने का तो रहेगा नहीं। यह संसार ही नहीं तो संसार के कारण आस्रव-बन्ध नहीं, तो उन्हें

www.vitragvani.com

मिटाने का उपाय संवर-निर्जरा की परिणति प्रवृत्ति भी नहीं, तब तो व्यवहार रहा ही नहीं। समझ में आया ?

व्यवहार के आश्रय से संवर-निर्जरा होते हैं कि यह प्रश्न यहाँ नहीं; परन्तु होती हुई प्रवृत्ति के परिणाम को उपचार से जीव का कहा जाता है। वास्तविक निश्चय से तो द्रव्य के स्वरूप में वे है नहीं। समझ में आया ? परन्तु व्यवहार से व्यवहार नहीं, तब तो फिर निश्चय उसे साबित किस प्रकार करेगा ? ऐ.. धर्मचन्दजी ! अटपटी बात गजब ! सत्य बात है। समझ में आया ?

पर्याय में संसार ही नहीं, संसार नहीं तब तो व्यवहार नहीं, अर्थात् पर्याय उपचार भी नहीं। विकार ही नहीं पर्याय में तो आत्मा में उपचाररूप से जो विकार कहलाता है, वह नहीं। समझ में आया ? निश्चय में नहीं। यदि ऐसी दृष्टि करे कि वह मेरे द्रव्य में है, तब तो मिथ्यादृष्टि है, परन्तु पर्याय में है – ऐसा तो इसे ज्ञान होना चाहिए। ऐ... वजुभाई ! समझ में आया ? वरना निश्चयाभास हो जाएगा, शुभभाव भी रहेगा नहीं।

गाथा - ५

आगे कहते हैं कि आचार्य दोनों नयों का उपदेश किस प्रकार करते हैं–

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः।।५।।

निश्चय है भूतार्थ और व्यवहार यहाँ अभूतार्थ कहा।
भूतार्थ–बोध से विमुख अहो प्रायः सारा संसार रहा।।५।।

अन्वयार्थ : (इह) इस ग्रन्थ में (निश्चयं) निश्चयनय को (भूतार्थं) भूतार्थ और (व्यवहारं) व्यवहारनय को (अभूतार्थं) अभूतार्थ (वर्णयन्ति) वर्णन करते हैं। (प्रायः) प्रायः (भूतार्थबोध विमुखः) भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय है, वह (सर्वोऽपि) समस्त ही (संसारः) संसारस्वरूप है।

टीका : 'इह निश्चयं भूतार्थं व्यवहारं अभूतार्थं वर्णयन्ति' आचार्य इन दोनों नयों में निश्चयनय को भूतार्थ कहते हैं और व्यवहारनय को अभूतार्थ कहते हैं।

भावार्थ : भूतार्थ नाम सत्यार्थ का है। भूत अर्थात् जो पदार्थ में पाया जावे, और अर्थ अर्थात् 'भाव'। उनको जो प्रकाशित करे तथा अन्य किसी प्रकार की कल्पना न करे, उसे भूतार्थ कहते हैं। जिस प्रकार कि सत्यवादी सत्य ही कहता है, कल्पना करके कुछ भी नहीं कहता। वहीं यहाँ बताया जाता है। यद्यपि जीव और पुद्गल का अनादि काल से एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है और दोनों मिले हुए जैसे दिखाई पड़ते हैं तो भी निश्चयनय आत्मद्रव्य को शरीरादि परद्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशित करता है। यही भिन्नता मुक्तदशा में प्रकट होती है। इसलिए निश्चयनय सत्यार्थ है।

अभूतार्थ नाम असत्यार्थ का है। अभूत अर्थात् जो पदार्थ में न पाया जावे और अर्थ अर्थात् भाव। उनको जो अनेक प्रकार की कल्पना करके प्रकाशित करे उसे अभूतार्थ कहते हैं। जैसे कोई असत्यवादी पुरुष जरा से भी कारण का बहाना–छल

www.vitragvani.com

पाकर अनेक कल्पना करके असदृश को भी सदृश कर दिखाता है। उसी को बताते हैं। जैसे यद्यपि जीव और पुद्गल की सत्ता भिन्न है, स्वभाव भिन्न है, प्रदेश भिन्न है, तथापि एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध का छल (बहाना) पाकर 'आत्मद्रव्य को शरीरादिक परद्रव्य से एकत्वरूप कहता है।' मुक्त दशा में प्रकट भिन्नता होती है। तब व्यवहारनय स्वयं ही भिन्न–भिन्न प्रकाशित करने को तैयार होता है। अतः व्यवहारनय असत्यार्थ है। 'प्रायः भूतार्थ बोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः' अतिशयपने सत्यार्थ जो निश्चयनय है, उसके परिज्ञान से विपरीत जो परिणाम (अभिप्राय) है, वह समस्त संसारस्वरूप ही है।

भावार्थ : इस आत्मा का परिणाम निश्चयनय के श्रद्धान से विमुख होकर, शरीरादिक परद्रव्यों के साथ एकत्व श्रद्धानरूप होकर प्रवर्तन करे, उसी का नाम संसार है। इससे जुदा संसार नाम का कोई पदार्थ नहीं है। इसलिए जो जीव संसार से मुक्त होने के इच्छुक हैं उन्हें शुद्धनय* के सन्मुख रहना योग्य है। इसी को उदाहरण देकर समझाते हैं। जिस प्रकार बहुत पुरुष कीचड़ के संयोग से जिसकी निर्मलता आच्छादित हो गई है, ऐसे गंदले जल को ही पीते हैं और कोई अपने हाथ से कतकफल (निर्मली) डालकर कीचड़ और जल को अलग–अलग करता है। वहाँ निर्मल जल का स्वभाव ऐसा प्रकट होता है जिसमें अपना पुरुषाकार प्रतिभासित होता है, उसी निर्मल जल का वह आस्वादन करता है। उसी प्रकार बहुत से अज्ञानी जीव, कर्म के संयोग से जिसका ज्ञानस्वभाव ढँक गया है, ऐसे अशुद्ध आत्मा का अनुभव करते हैं। कुछ ज्ञानी जीव अपनी बुद्धि से शुद्धनिश्चयनय के स्वरूप को जानकर कर्म और आत्मा को भिन्न–भिन्न करते हैं, तब निर्मल आत्मा का स्वभाव ऐसा प्रगट होता है जिसमें अपने चैतन्यपुरुष का आकार प्रतिभासित हो जाता है। इस प्रकार वह निर्मल आत्मा का स्वानुभवरूप आस्वादन करते हैं। अतः शुद्धनय कतकफल समान है, उसी के श्रद्धान से सर्वसिद्धि होती है।।५।।

आगे कहते हैं कि यदि एक निश्चयनय के श्रद्धान से ही सर्व सिद्धि होती है तो फिर आचार्य व्यवहारनय का उपदेश क्यों करते हैं? उसका उत्तर – अर्थ इस गाथा में कहा है।।५।।

* शुद्धनय का विषय–त्रैकालिक पूर्णरूप अपना निश्चय परमात्मा।

www.vitragvani.com

गाथा ५ पर प्रवचन

अब, **आगे कहते हैं कि आचार्य दोनों नयों का उपदेश किस प्रकार करते हैं?** दो बात की — मुख्य और उपचार। इनकी व्याख्या की। अब निश्चय और व्यवहार है कैसा? समझ में आया? **आचार्य दोनों नयों का उपदेश किस प्रकार करते हैं?** यह बात पाँचवीं गाथा में करते हैं।

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः।।५।।

'**वर्णयन्त्य**' न? कहते हैं या नहीं? अभूतार्थ भी कहते हैं या नहीं? देखो! संसार की व्याख्या की।

अन्वयार्थ : '**इह**' शब्द पड़ा है न? '**इह**' किसे लागू पड़ता है? आचार्य को या ग्रन्थ को? '**निश्चयमिह भूतार्थं**' इस ग्रन्थ में या आचार्य ऐसा कहते हैं — ऐसा आवे, '**इह**' किसमें आता है? इसमें लिखा है कि इस ग्रन्थ में, और इनने उसमें जहाँ पूरा शब्द रखा है वहाँ आचार्य इन दोनों नयों में.... ऐसा लिखा है। टीका है न? टीका, इससे कहा यह '**इह**' वास्तव में किसे लागू पड़े? दोनों को समुच्चय लागू पड़े। '**इह**' — ऐसा कहा न? आचार्य दो नय का उपदेश किस प्रकार करते हैं? यह आचार्य, भूतार्थ-व्यवहार... निश्चय को भूतार्थ और वर्णन को अभूतार्थ वर्णन करते हैं। '**वर्णयन्त्य**' है न?

मुमुक्षु : '**इह**' का अर्थ मूल में नहीं, अन्वयार्थ, इसमें तो है।

उत्तर : ....इसमें भी है। '**इह**' का अर्थ इस ग्रन्थ में किया है और टीका में '**इह**' का अर्थ आचार्य ने किया है। समझ में आया कहता हूँ वह?

मुमुक्षु : हिन्दी में से किया है अन्वयार्थ।

उत्तर : हिन्दी अनुसार ही किया है। '**इह निश्चयं भूतार्थं व्यवहारं अभूतार्थं वर्णयन्ति' आचार्य इन दोनों नयों में निश्चयनय को भूतार्थ कहते हैं और व्यवहारनय को अभूतार्थ कहते हैं।** इसमें आचार्य लिखा है। '**इह' इस ग्रन्थ में....** देखो! **इस ग्रन्थ**

www.vitragvani.com

में... इस ग्रन्थ में–पुरुषार्थसिद्धि–उपाय शास्त्र में आचार्य **निश्चयनय को भूतार्थ...** इस निश्चयनय को सत्य कहते हैं, सत्य कहते हैं, सत्यार्थ कहते हैं। निश्चय के कथन को सच्चा कहते हैं। भूत–विद्यमान भाव कहते हैं, सच्चा भाव कहते हैं। **व्यवहारनय को अभूतार्थ वर्णन करते हैं।...** और व्यवहारनय को खोटा है, उपचार है, व्यवहार है, झूठा है—ऐसा वर्णन करते हैं। अभूतार्थ अर्थात् झूठा है—ऐसा वर्णन करते हैं। समझ में आया? परन्तु झूठा जानना नहीं चाहिए? झूठा भी है या नहीं? स्वरूप में नहीं परन्तु राग, रागरूप से; संसार, संसाररूप से; निमित्त, निमित्त सम्बन्धरूप से है या नहीं?

वर्णन करते हैं, **'वर्णयन्ति'** लो! वर्णन करते हैं, ऐई..! वापस आया। आचार्य वर्णन करते हैं, आचार्य वर्णन करते हैं — ऐसा लिखा है। अमृतचन्द्र स्वयं कहते हैं। ऐई..! देवानुप्रिया! वर्णन करते हैं – ऐसा कहा। वर्णन कर सकते होंगे न? परन्तु वाणी में आवे क्या? ऐसे ही कथन आते हैं। कहते हैं कि झूठे कथन की शैली ऐसी होती है; इसलिए उपचार कथन ही ऐसे होते हैं। है न? छोटा भाई! वर्णन करते हैं आचार्य। और आचार्य स्वयं कहते हैं कि मैंने कहा नहीं। यहाँ कहते हैं, आचार्य वर्णन करते हैं। वहाँ कहते हैं कि मैंने कहा नहीं, शब्द ने कहा है। कहने के बाद में भी पहले यही कहते हैं। वहाँ आगे ऐसा वर्णन आता है, शब्दों में ऐसा वर्णन आचार्य के ज्ञान में इस प्रकार से तैरता है और वर्णन वाणी में इस प्रकार आता है – ऐसा कहते हैं। निश्चय–व्यवहार का वास्तविक तत्त्वज्ञान ज्ञान में वर्तता है और वाणी में उस प्रकार से आता है; इसलिए निमित्त से कथन किया कि आचार्य इसका वर्णन करते हैं। अरे...! झगड़ा!

'प्रायः' प्रायः भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय है,... देखो! वजन यहाँ है। उसने दूसरा कहा कि व्यवहार का ज्ञान नहीं, इसलिए भ्रष्ट है। भाई मक्खनलालजी ने इसका अन्वयार्थ किया है। इसकी पूरी शैली यह चली आती है। **'व्यवहारनय केवलपि देशना नास्ति'** व्यवहार पर वजन है। निश्चयनय के लिए – ऐसा नहीं कहा। बहुत करके संसारी जीव निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध वास्तविक भगवान आत्मा, राग और सम्बन्ध से रहित ऐसा निर्विकल्प आत्मा ज्ञायकभाव है। उसके–निश्चय के ज्ञान से रहित जीव **समस्त ही संसारस्वरूप है।** ऐसा जो अभिप्राय, वह संसाररूप है

www.vitragvani.com

- ऐसा कहते हैं। निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय, शुद्ध चैतन्य ज्ञायकभाव आत्मा, वह सम्यग्दर्शन का विषय और शुद्ध चैतन्य का अनुभव, वह निश्चय - ऐसे अभिप्रायरहित जो अभिप्राय। कहो, समझ में आया? राग से धर्म होता है, राग से मोक्ष होता है, व्यवहार से मोक्ष होता है — ऐसा सब जो अभिप्राय, **समस्त ही संसारस्वरूप है।** यहाँ तो यह कहते हैं, लो! अभिप्राय, संसारस्वरूप है — ऐसा यहाँ वजन दिया है। आहा! पूरा जोर यहाँ है।

भगवान आत्मा अखण्ड, अभेद, शुद्ध चैतन्यज्योत, इस निश्चय के ज्ञानरहित, ऐसे व्यवहार से ही माननेवाले—राग और पुण्य का सम्बन्ध है, इससे आत्मा का कल्याण होगा—ऐसा जिनका अभिप्राय है अथवा यह व्यवहार करते-करते निश्चय होगा—ऐसा जो अभिप्राय है, वह निश्चयनय के ज्ञान से विपरीत ज्ञान है। समझ में आया? व्यवहार दया, दान, शुभभाव करते-करते निश्चय होगा, यह अभिप्राय, निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध अभिप्राय है। व्यवहार को जानने को कहा; होता है बराबर, परन्तु उससे निश्चय होता है — ऐसा जो अभिप्राय, वह स्व अखण्ड ज्ञायकभाव का जो निश्चय, ऐसे अभिप्राय से यह अभिप्राय, विरुद्ध अभिप्राय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : बहुत करके अर्थात्?

उत्तर : बहुत करके अर्थात् बहुत ऐसे जीव होते हैं, ऐसा। अज्ञानी बहुत ऐसे ही होते हैं। बहुत करके अर्थात्? बहुत करके अर्थात् निश्चय का ज्ञान नहीं, ऐसा। बहुत करके जीव बहुत ऐसे ही होते हैं — निश्चयनय के बोधरहित। कोई ज्ञानी हैं, वे भले हो। प्रायः शब्द प्रयोग किया है अर्थात् बहुत करके।

भूतार्थ अर्थात् निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय है,... निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय, यहाँ वजन है। **'भूतार्थबोध विमुखः'** ऐसा शब्द है न? महासिद्धान्त है, भाई! एक-एक शब्द में... यह तो अमृतचन्द्राचार्य के शब्द हैं। **'भूतार्थबोध विमुखः'** भगवान आत्मा सत्यार्थ प्रभु शुद्ध चैतन्यमूर्ति के ज्ञान से विमुख है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और दूसरा सब ज्ञान है, कहते हैं। व्यवहार का, शास्त्र का, इस राग का, कर्म के सम्बन्ध का और कर्म की प्रकृतियों का।

www.vitragvani.com

मुमुक्षु : .....

उत्तर : हाँ; भले रहा न। हाँ, कोई दिक्कत नहीं, कोई दिक्कत नहीं। बहुत करके कहा है न? अतिशय ठीक है। विशेष है न, वह तो ठीक है। अतिशयपने कहा। अतिशयपने सत्यार्थ जो निश्चय। देखो! यह बहुत अच्छा अर्थ किया है। ऐसा डाला है। इसमें डाला है। इसमें होगा। अन्त में डाला है, घर का तो नहीं डाले। इसमें होगा। यह है न, बहुत करके, टोडरमल में यह है। अर्थात् प्रायः आत्मा का परिणाम निश्चयनय के सिद्धान्त से विमुख होकर सहज... आत्मा का है न? आहाहा! इसमें नहीं, इसमें भी नहीं। टोडरमल में है। वह तो इनके कुछ घर का डाले... अतिशयपने कहाँ आया? **'प्रायः भूतार्थबोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः' अतिशयपने सत्यार्थ जो...** क्या कहते हैं; समझ में आया? अभूतार्थ वर्णन करता है। खास करके भूतार्थ निश्चयनय के ज्ञान से, अतिशय अर्थात् ऐसा। समझ में आया? खास करके **निश्चयनय के ज्ञान से विरुद्ध जो अभिप्राय है,...** लो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप अभेद (है), उसके अभिप्राय का पता नहीं और उसके ज्ञान का पता नहीं। अकेले व्यवहार के ज्ञान से आत्मा को लाभ होता है — ऐसा जिसका अभिप्राय है, वह भूतार्थबोध विमुख है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जिसे निश्चय का ज्ञान, भूतार्थ का ज्ञान नहीं, वह भूतार्थ ज्ञान से विमुख है, अर्थात् अभेद चैतन्य ज्ञायकस्वभाव, वह जो आत्मा है — ऐसा जिसका ज्ञान और अभिप्राय नहीं है; वह उससे विमुख व्यवहार-राग से, पुण्य से और इससे मेरा आत्मा है और इससे मुझे लाभ होता है — ऐसा जिसका अभिप्राय है, लो! **समस्त ही संसारस्वरूप है।** समझ में आया? १४ वीं गाथा में कहा न? भव बीज है।

एवमयं कर्मकृतैर्भावैरसमाहितोऽपि युक्त इव।
प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।।१४।।

जो कोई, आत्मा को रागादि का सम्बन्ध व्यवहार से है, वैसा ही आत्मा को मान ले। समझ में आया? पर्याय में सम्बन्ध है, वैसा आत्मा को मान ले तो वह **'बालिशानां'** अज्ञानी, उसका ज्ञान, भवबीज है। लो! समझ में आया? वस्तुस्वरूप (आत्मा) राग और

www.vitragvani.com

शरीर से भिन्न है — ऐसा जो आत्मा का स्वरूप, उसका जो बोध, उससे विमुख इसे रागवाला और व्यवहारवाला, रागवाला और व्यवहारवाला अर्थात् रागवाला, यह रागवाला आत्मा है — ऐसा मान लेता है। वह निश्चयनय के ज्ञान से विपरीत अभिप्रायवाला, वह संसार है। कहो, समझ में आया इसमें?

समस्त ही संसारस्वरूप है। अर्थात् मिथ्यात्वस्वरूप है। समझ में आया? वह अभिप्राय ही मिथ्यात्व है — ऐसा कहते हैं। दूसरे प्रकार से कहें तो इस खास भूतार्थ निश्चय का जो ज्ञान, अभेद का ज्ञान और अभेद, यह आश्रय करनेयोग्य है; इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी अभिप्राय (अर्थात्) राग का आश्रय करना, निमित्त का आश्रय करना, संयोग का आश्रय करना - इससे लाभ होगा - ऐसा जो सब अभिप्राय, वह **'भूतार्थबोध विमुखः'** वह इससे विपरीत, यह सब अभिप्राय संसार है। है न? यह अभिप्राय, संसार है। यहाँ तो अभिप्राय, वह संसार है। समझ में आया? यह मिथ्यात्वभाव, वह संसार है — ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। यह तो समझ में आये ऐसी भाषा है, कोई बहुत वैसी (कठिन) नहीं है।

आत्मा भूतार्थबोध ज्ञायकस्वरूप, अभेदस्वरूप का जो बोध और उसका जो अभिप्राय, उसके विमुख बोध (अर्थात्) व्यवहार है तो उससे निश्चय होगा, व्यवहार है तो आत्मा को उसके कारण आलम्बन मिलेगा, निश्चय का आलम्बन मिलेगा — ऐसा जो इसका निश्चय के आश्रय के अवलम्बन के बोध ज्ञानरहित व्यवहार के आलम्बनवाला जितना बोध है, वह सब मिथ्यात्व है और वह मिथ्यात्व, संसार है। देखो! यहाँ मिथ्यात्व को संसार, अभिप्राय को संसार कहा। देखो! **'भूतार्थबोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः'** ऐसा कहा न? **'भूतार्थबोध विमुखः सर्वोऽपि संसारः'** लो! समझ में आया? ऐसा विवाद करते हैं — ऐसा है और वैसा है। सुन न अब! यहाँ मिथ्यात्व, वही संसार (है-ऐसा) सिद्ध करना है। सम्यग्दर्शन, वही मोक्ष का कारण और मोक्षस्वरूप है। समझ में आया?

अकेला भगवान शुद्ध चैतन्य पिण्ड प्रभु, जिसमें राग और पर का सम्बन्ध ही नहीं - ऐसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप का अनुभव - दृष्टि, वह मोक्ष है, वह मोक्ष है क्योंकि वस्तु,

www.vitragvani.com

मोक्षस्वरूप है। उसका आश्रय करके दशासहित का आत्मा हुआ, वह समकित ही मोक्ष है। समझ में आया? मोक्ष से होता भाव, वह मोक्षस्वरूप है; मोक्षस्वरूप से विपरीत भाव, अभिप्राय, वह मिथ्यात्व, वह संसार है।

देखो! संसार की व्याख्या इतनी संक्षिप्त! संसार तो कैसा बड़ा! चार गति... राग-द्वेष, वह यहाँ नहीं कहा। भाई! यहाँ तो मिथ्या अभिप्राय, वह संसार है। वजन है... वह संसार है, वह संसार है। आहाहा! इसका अर्थ हुआ कि भूतार्थ से विमुख नहीं और भूतार्थ से यथार्थ-सन्मुख ज्ञान है, वह मोक्ष है। आहाहा! समझ में आया? निश्चय के आश्रय से होती दशावाला वह भाव ही मोक्ष है। इससे विरुद्धवाला भाव, संसार है। लो! ऐई...! पण्डितजी! इसमें से निकलता है?

यहाँ तो वजन कहाँ है अपने? देखो! कि इस ग्रन्थ में निश्चयनय को सत्य कहेंगे और व्यवहारनय को अभूतार्थ - झूठा कहेंगे। - ऐसा स्पष्ट शब्दार्थ पहला (है)। उसमें खास करके, सच्चे निश्चय का अर्थात् सच्चे ज्ञान से विरुद्ध, सच्चे के ज्ञान से विरुद्ध, लो! ठीक! सच्चे ज्ञान से विरुद्ध, सच्चा-सत्य प्रभु ज्ञायकभाव, अभेदभाव, वह सच्चा; उसके ज्ञान से विरुद्ध। सच्चा बोध, वह मुक्त और सच्चे बोध से विमुख, वह संसार। कहो, गुलांट खाकर बात आती है या नहीं इसमें? समझ में आया?

क्योंकि स्वरूप सच्चे तत्त्व का बोध (कहो) तो तत्त्व, मुक्तस्वरूप है। समझ में आया? यह मुक्तस्वरूप, ऐसा भगवान आत्मा, इसका जो बोध, वही मुक्तस्वरूप का बोध, वह मोक्षस्वरूप है। इस ज्ञान में सब आ गया, दर्शन-चारित्र सब (आ गया)। समझ में आया? और इसका विमुख बोध, लो! इससे अकेले व्यवहार का ज्ञान, संसार का ज्ञान, प्रकृति का ज्ञान, अमुक का ज्ञान, अमुक का ज्ञान। समझ में आया? कर्मप्रकृति का ज्ञान। एक सौ अड़तालीस ऐसे होती है और उसका अमुक होता है, और अमुक होता है, यह सब ज्ञान-निश्चय के बोधरहित का बोध जो है, वह बोध स्वयं ही मिथ्यास्वरूप है। वास्तव में तो यहाँ ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'भूतार्थबोध विमुखः' देखो! विमुख का अर्थ यहाँ अभिप्राय किया, भाई! समझ में आया? **'भूतार्थबोध विमुखः'** अर्थात् अभूतार्थ बोध, ऐसा। इसका अर्थ ही यह किया।

www.vitragvani.com

'भूतार्थबोध विमुखः' भूतार्थबोध विमुख अर्थात् अभिप्राय। अथवा भूतार्थ-सच्चे बोध से रहित विपरीत अर्थात् अज्ञान। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य परमानन्द ज्ञायकभाव, शुद्धस्वरूप, उसके जो ज्ञान-श्रद्धा, वह वास्तविक स्वरूप अर्थात् मुक्तस्वरूप, उसका ज्ञान-बोध, वह मुक्तस्वभाव-मुक्तभाव, उससे विपरीत बोध। अकेले, व्यवहार से लाभ होता है, राग से लाभ होता है, प्रकृति के ज्ञान से, परतरफ की सन्मुखता से—ऐसा जो सब अभिप्राय, उसे भगवान आचार्यदेव, संसार कहते हैं। देखो! यहाँ स्त्री-पुत्र, संसार नहीं; शरीर, संसार नहीं; पैसा-बैसा, संसार नहीं। शोभालालजी! बँगला, संसार नहीं।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : ....रख कौन सकता है? रखे कौन और छोड़े कौन?

यहाँ तो संसार का वास्तविक मूलरूप यह है कि वास्तविक ज्ञायक भगवान बोधस्वरूप चैतन्यस्वरूप के ज्ञान से, श्रद्धा से, सन्मुखता से विरुद्ध जितने अभिप्राय हैं, वह सब अभिप्राय अकेला संसार है। आहाहा! समझ में आया? जैन दिगम्बर साधु नौवें ग्रैवेयक गया, परन्तु कहते हैं कि निश्चयनय के बोधरहित जो उसे ग्यारह अंग नौ पूर्व का ज्ञान, वह समस्त ही संसार, मिथ्या अभिप्रायस्वरूप है, वह संसारस्वरूप है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया या नहीं? नौ पूर्व पढ़ा, ग्यारह अंग पढ़ा और पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण विकल्प (किये), वह इस स्वभाव के बोध के आश्रय के अवलम्बन रहित ज्ञान, वह सब अकेला बोध, वह सब मिथ्या अभिप्रायवाला है। वह संसार है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर में सुख है - यह अभिप्राय...

उत्तर : यह अभिप्राय मिथ्या संसार (है), इसके लिये तो यहाँ कहा है। 'भूतार्थ बोध विमुख'। भूतार्थ बोध विमुख — अभूतार्थ बोध अर्थात् मिथ्या अभिप्राय, ऐसा। समझ में आया? धर्मचन्दजी! धर्म-विरुद्ध, वह अधर्म। आहाहा! आचार्यों की शैली भी...! वैसे तो (यह) श्रावकाचार चरणानुयोग का ग्रन्थ है, परन्तु उसका मूल क्या? मूल तो यह दर्शन

www.vitragvani.com

है — यह आगे कहेंगे। अखिल प्रयत्न द्वारा पहले उपाय से सम्यग्दर्शन प्रगट करना — ऐसा कहेंगे आगे। समझ में आया? दर्शन की शुरुआत करेंगे न!

देखो! २१ गाथा, २१; श्रावक की शुरुआत करते हैं, वहाँ! **इन तीनों में प्रथम किसको अंगीकार करना चाहिए, वह कहते हैं–** २१।

तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।
तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञानं चरित्रं च।।२१।।

महा गाथा, देखो! **'तत्र'** श्रावक को, गृहस्थों को भी... यह श्रावकधर्म का व्याख्यान शुरु होता है। ऊपर देखो! श्रावकधर्म व्याख्यान। श्रावक को भी तब पहले, **'तत्रादौ' 'तत्र'** प्रथम में प्रथम **'अखिलयत्नेन' समस्त प्रकार सावधानतापूर्वक यत्न से सम्यग्दर्शन को भले प्रकार अंगीकार करना चाहिये।** है?

मुमुक्षु : यह तो छह द्रव्य जाने, उसमें आ गया।

उत्तर : छह द्रव्य में कहाँ आया? धूल में। यहाँ तो कहते हैं, यहाँ निश्चय स्वभाव अभेद है, उसका दर्शन, उसे दर्शन कहते हैं। छह द्रव्य का ज्ञान तो एक समय की पर्याय में अभव्य को भी होता है। वह मिथ्याज्ञान–मिथ्या अभिप्राय है – ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

उत्तर : यह छह द्रव्य का ज्ञान, स्वद्रव्य का ज्ञानसहित है यह। छह द्रव्य में स्वयं द्रव्य साथ में आ गया। समझ में आया?

'क्योंकि' देखो! २१ में है **'तस्मिन् सति एव' सम्यग्दर्शन होने पर ही सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होता है।** है न? क्योंकि **'तस्मिन् सति एव'** समझ में आया? **'यतो'** का अर्थ यह किया है क्योंकि **'यतो'** है न? **'यत'। 'तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयम–खिलयत्नेन।'** देखो! सम्यग्दर्शन अखिल प्रयत्न से होता है, ऐसे के ऐसे नहीं होता। समझ में आया? प्रयत्न बिना होता है? वह कहे – क्रमबद्ध है। परन्तु क्रमबद्ध का निर्णय किया, वह स्वरूप के प्रयत्न से किया, तब क्रमबद्ध का निर्णय हुआ। समझ में आया? विपरीत निर्णय भी कहीं प्रयत्न बिना है? यह तो 'अखिल प्रयत्न' – इतना जोर है आत्मा का। ऐसे

www.vitragvani.com

समस्त प्रकार से। सावधानरूप यत्न से, **'यत्नेन'** सावधानरूप यत्न से। सम्यग्दर्शन, श्रावक होने के पहले, पहला यह अंगीकार करना। जन्मा, इसलिए हो गया समकित — दिगम्बर में जन्मा, इसलिए समकित! अब व्रत लेना, ऐसे और ऐसे। क्या हो अब? बड़ा भाग बढ़ गया है। समाज को कुछ पता नहीं। साधारण जिस प्रकार से चलता हो, उस प्रकार से चलने दो। दूसरे साधारण विचार आवे तो इसके दो भाग पड़ जाए। किसी को व्यवहार का आग्रह हो जाए और किसी को निश्चय की मुख्यता रहे और व्यवहार का ज्ञान। समझ में आया? क्योंकि सम्यग्दर्शन होने पर भी, उसके होते ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है, चारित्र को चारित्र हो। तो ज्ञान और चारित्र हो; नहीं तो ज्ञान-चारित्र हो नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

टीका : 'इह निश्चयं भूतार्थं व्यवहारं अभूतार्थं वर्णयन्ति' आचार्य इन दोनों नयों में निश्चयनय को भूतार्थ कहते हैं... देखो! वे कहते हैं कि सब सबकी अपेक्षा सच्ची; इसलिए किसी को सच्चा और खोटा कहना नहीं। ऐसे दृष्टान्त देते हैं। वे कैसे? सन्मति तर्क का श्लोक है न? समझ में आया? यहाँ तो आचार्य कहते हैं — दोनों नयों में निश्चयनय को सच्चा कहते हैं। ऐसे बहुत कथन इसमें आते हैं, उसमें भी आते हैं। एक को सच्चा और दूसरे को खोटा — ऐसा कहना नहीं, निराकरण करना नहीं; वरना एकान्त हो जाएगा। यह तो अस्तित्व धराता है, उसका विषय है, विषय है परन्तु यह निश्चय सच्चा है। **और व्यवहारनय को अभूतार्थ कहते हैं।** खोटा कहते हैं, अर्थात् वह है अवश्य, परन्तु जो स्वरूप कहता है, वैसा वह नहीं है - ऐसा कहते हैं। इसके सब विवाद। वे कहें - अभूतार्थ है, झूठा है सब? तो फिर यह शरीर और वाणी के सब स्कन्ध व्यवहार है, लो! व्यवहार झूठा है यह? कर्म है, शरीर है, वाणी है, भगवान है, परम औदारिक शरीर है, आठ कर्म, यह सब संयोगी बात है, व्यवहारिक बात है। एक परमाणु, वह निश्चय द्रव्य है, दो परमाणु तो व्यवहार द्रव्य हो गया। व्यवहार द्रव्य, तो व्यवहार है या नहीं? व्यवहार से सत् उपचार से द्रव्य है या नहीं वह। अनुपचार से द्रव्य, अकेला द्रव्य वह है। भगवान भी अनुपचार से एक द्रव्य उसे अनुपचार से देखते हैं और संयोगी को सत् उपचार है.. समझ में आया? उपचार कहते हैं, उपचार का सत् है। यह उपचार का सत् है। उसे ऐसा जानते हैं, भगवान ऐसा जानते हैं। वाणी में भी ऐसा आता है। अरे..! भगवान! निकलने का रास्ता

www.vitragvani.com

कठिनता से हाथ में आया, उसमें ऐसे लिखान में उसमें झगड़े। यह पृष्ठ नहीं कहलाता, अमुक नहीं कहलाता, अपने को दुःख दे, नदी की बाढ़ दुःख दे; अकेला परमाणु देता है? यह व्यवहार है या नहीं? पानी का पूर, वह कष्ट मारता है। कर्म के बहुत रजकण, आत्मा को राग का निमित्त होते हैं, अकेला रजकण नहीं होता। यह है या नहीं? अमुक है या नहीं? ऐई...! सब प्रश्न हैं सब। है, उससे किसने मना किया? व्यवहार से है, व्यवहार से व्यवहार है; यथार्थपने वह नहीं। व्यवहार से व्यवहार है न। कहो, समझ में आया?

आचार्य इन दोनों नयों में निश्चयनय को सच्चा कहते हैं। यह तो ग्यारहवीं गाथा है और **'व्यवहारनय को अभूतार्थ कहते है'** ११ वीं गाथा, समयसार। **'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।'** यहाँ यही व्याख्या है, अमृतचन्द्राचार्य की। समझ में आया? झगड़ा! नय के हल के लिये, आत्मा के हल के लिये नय है, तब वहाँ उलझन के लिये कर डाला।

टीका : भूतार्थ नाम सत्यार्थ का है। देखो! आया न? सच्चे का नाम भूतार्थ है, सच्चे का नाम भूतार्थ है। खोटे का नाम अभूतार्थ है। खोटा, खोटेरूप से तो सच्चा है या नहीं? या खोटा, खोटेरूप से नहीं तो फिर वह खोटा सच्चा साबित ही नहीं हुआ, खोटा साबित हुआ। झूठा बोलो, झूठा बोलनेरूप से तो सच्चा है या नहीं? सच्चा अर्थात् ऐसा है या नहीं? या है ही नहीं? पण्डितजी! तो सच्चा क्या है? लो!

भूत अर्थात् जो पदार्थ में पाया जावे, और अर्थ अर्थात् 'भाव'। समझ में आया? **भूत अर्थात् जो पदार्थ में पाया जावे, और अर्थ अर्थात् 'भाव'। उनको जो प्रकाशित करे...** उसमें हो, उसे प्रकाशे, पदार्थ में हो, उसे प्रकाशे। समझ में आया? पदार्थ में जो भाव हो, उसे प्रकाशे — ऐसा कहते हैं। न हो उसे? – ऐसा नहीं। भूतार्थ तो जो हो, उसे कहते हैं। **पदार्थ में पाया जावे, और अर्थ अर्थात् 'भाव'।** ऐसा। समझ में आया? ऐसा कहा इसमें। तत्त्वार्थ है न? **भूत अर्थात् जो पदार्थ में पाया जावे, और अर्थ अर्थात् 'भाव'। उनको जो प्रकाशित करे...** यहाँ तो उसमें भाव हो, उसे प्रकाशे – यह सिद्ध करना है। **उनको जो प्रकाशित करे तथा अन्य किसी प्रकार की कल्पना**

www.vitragvani.com

न करे,.... समझ में आया? उसमें दूसरा कुछ नहीं होता। जो भाव - अखण्ड ज्ञायकभाव, ज्ञायकभाव को प्रकाशे। **किसी प्रकार की कल्पना न करे, उसे भूतार्थ कहते हैं।** उसे सच्चा कहते हैं। समझ में आया? अकेले ज्ञायकभाव में ज्ञायकभाव को प्रकाशे; उसमें राग-द्वेष और भेद को नहीं — ऐसे भाव को, ऐसे नय को सत्यार्थ, भूतार्थ, सच्चा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें?

जिस प्रकार कि सत्यवादी सत्य ही कहता है,... सत्य बोलनेवाला तो सत्य ही बात करे। **कल्पना करके कुछ भी नहीं कहता।** जरा भी कल्पना करके कहे नहीं। जैसा हो वैसा सच्चा-सत्य, सत्यवादी कहे। **वहीं यहाँ बताया जाता है। यद्यपि जीव और पुद्गल का अनादि काल से एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है...** देखो! जीव और पुदगल का अनादि से एकक्षेत्र में व्यापने में सम्बन्ध है। **दोनों मिले हुए जैसे दिखाई पड़ते हैं...** दोनों मिले हुए जैसे दिखते हैं; मिले नहीं (हैं)। मिले हुए नहीं हैं, मिले हुए जैसे दिखते हैं। मिले क्या? धूल। दोनों कहा। **दोनों मिले हुए जैसे....** दोनों मिले हुए (कहा), तो दो रहे और मिले हुए जैसे दिखते हैं - इसका अर्थ क्या है? कि दोनों ऐसे संयोग में दिखते हैं।

तो भी निश्चयनय आत्मद्रव्य को शरीरादि परद्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशित करता है। देखा? तो भी निश्चयनय आत्मद्रव्य को शरीरादि, रागादि, सबसे, हों! निश्चयनय भगवान आत्मा को शरीर, वाणी, कर्म, राग-द्वेष इन सब परद्रव्यों से भिन्न ही प्रकाशित करता है। वह भले कर्म से और शरीर से भिन्न प्रकाशता है, इसका अर्थ यह हो गया कि द्रव्य पर दृष्टि देने से राग से भी भिन्न पड़ जाता है। समझ में आया? परद्रव्य से भिन्न प्रकाशता है, अर्थात् पर के लक्ष्य से छूटकर स्वद्रव्य में आता है, तब परद्रव्यों से भिन्न हुआ, तब राग से भी भिन्न हो गया।

मुमुक्षु : मिले हुए -

उत्तर : मिले हुए, एक साथ दिखते हैं। दूध और पानी एक साथ दिखते हैं, परन्तु हैं भिन्न-भिन्न। दूध, वह दूध है और पानी, वह पानी है। समझ में आया?

यही भिन्नता मुक्तदशा में प्रकट होती है। है, वर्तमान में ऐसा ही है, वह भिन्नता

www.vitragvani.com

मुक्ति में प्रगट होती है। **इसलिए निश्चयनय सत्यार्थ है।** इसलिए वह निश्चयनय सच्चा है। सच्चा कथन करता है, सच्चा ज्ञान, सच्ची वाणी, सच्चा देश, वह निश्चयनय सच्चा है। लो! फिर व्यवहार की बात करेंगे। उसमें व्यवहार से शुरु हुआ, निश्चय कल पूरा हुआ।....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)